

NEP 2020 सिलेबस पर आधारित दर्शनशास्त्र IRC प्रश्न का प्रारूप

इस विषय का प्रश्न तीन भागों में बंटा रहेगा। खंड 'अ', 'ब' एवं 'स' में। खंड 'अ' में अतिलघु उत्तरीय 10/15 प्रश्न रहेंगे जो प्रति प्रश्न 1.5/1 अंक के होंगे यह बहुविकल्पी भी हो सकते हैं और कुल 15 अंक के रहेंगे 'खंड 'ब' में लघुउत्तरीय 5 रहेंगे जिसमें से 3 प्रश्न का उत्तर देने हैं और प्रत्येक प्रश्न 5 अंक के होंगे और इस खंड के कुल अंक 15 के होंगे तथा खंड 'स' में 5 प्रश्न होंगे जिसमें से 3 प्रश्न के उत्तर देने होंगे और इस खंड के प्रत्येक प्रश्न 15 अंक के होंगे। इस खंड के कुल अंक 45 अंक के होंगे। कुल सात प्रश्न बनाने हैं जिसमें खंड 'अ' में 10 या 15 प्रश्न उपविभाजित रहेंगे, खंड 'ब' 5 प्रश्नों में 3 तथा खंड 'स' में 5 प्रश्नों से 3 प्रश्न बनाने हैं। खंड 'अ' 15 अंक, 'खंड 'ब' 15 अंक एवं खंड 'स' के 45 अंक, इस तरह कुल 75 अंक के बाह्य परीक्षा होगी।

अतिलघु उत्तरीय प्रश्न खण्ड 'अ' (उत्तर 50 से 100 शब्दों में)

1- आगमनात्मक तर्क का क्या स्वरूप है?

कुछ से सब की ओर जाने की प्रवृत्ति को आगमनात्मक तर्क कहा जात है। आगमनात्मक तर्क का आकारिक आधार कार्यकारणता सिद्धांत एवं प्रकृति समरूपता नियम तथा वास्तविक आधार प्रयोग एवं निरीक्षण है।

2- वियोजनमूलक तर्क का क्या अर्थ है?

आधुनिक तर्कशास्त्र के अनुसार तर्कवाक्यों या प्रकथनों को तीन वर्गों में बांटा है – सरल तर्कवाक्य, यौगिक तर्कवाक्य। यौगिक तर्कवाक्य चार प्रकार के होते हैं – संयोजन, वियोजन, आपादान तथा निषेधक। वियोजनमूलक तर्कवाक्य वैसे तर्कवाक्य का कहा जूमता है जिसमें दो विकल्प रहते हैं जैसे – राम ईमानदार है या बेइमान। दोनों विकल्प विरोधी स्वभाव का होता है। इसे प्रतीक के रूप में या के लिए छोटा 'वी' v से संकेत करते हैं। जैसे राम ईमानदार है या बेइमान का प्रतीकात्मक तर्कशास्त्र में HvD के रूप में लिखते हैं। H ईमानदार का संकेत है और D बेइमान का संकेत है एवं v या का संकेत करता है। इसके सत्यता मूल्य इस तरह से निकालते हैं—

p q p∨q

T T T

T F T

F T T

F F F

अर्थात् दोनों विकल्प असत्य रहने पर ही इस तर्कवाक्य का सत्यता मूल्य असत्य होता है बाकि विकल्पों में ये सत्य होते हैं।

3- भारतीय दर्शन में नास्तिक एवं आस्तिक दर्शन कौन-कौन हैं?

भारतीय दर्शन के निम्न संप्रदाय हैं- वेद दर्शन, उपनिषद् दर्शन, भगवद्गीता दर्शन, चार्वाक दर्शन, बौद्ध दर्शन, जैन दर्शन, न्याय दर्शन, वैशेषिक दर्शन, सांख्य दर्शन, योग दर्शन, मीमांसा दर्शन एवं वेदांत दर्शन। इन संप्रदायों में चार्वाक, बौद्ध एवं जैन दर्शन नास्तिक संप्रदाय में आते हैं और चार्वाक को नास्तिक शिरोमणि कहा जाता है जबकि न्याय, वैशेषिक, सांख्य, योग, मीमांसा एवं वेदांत दर्शन षड् आस्तिक दर्शन के अंतर्गत आते हैं।

4- बौद्ध दर्शन के चार आर्य सत्यों में किस-किस विषयों की चर्चा हुई है?

बौद्ध दर्शन के प्रथम आर्य सत्य में दुःख की अर्थात् संसार दुःखों से भरा पड़ा है की चर्चा हुई है। द्वितीय आर्य सत्य में दुःख के कारणों की चर्चा हुई है दुःखों के बारह कड़ी बताए गए जिसे द्वादश निदान भी कहा गया है। तृतीय आर्य सत्य में इन दुःखों से त्राण पाने के लिए निर्वाण मार्ग में अपनाने के लिए कहा गया है अर्थात् निर्वाण की चर्चा हुई है एवं चतुर्थ आर्य सत्य में निर्वाण मार्ग में चलने के लिए अष्टांगिक मार्ग को अपनाने को कहा गया है।

5- पंचमहाव्रत किस दर्शन की अवधारणा है?

पंचमहाव्रत जैन दर्शन की अवधारणा है। जैन दर्शन में सम्यक् चरित्र को प्राथमिकता देते हुए मोक्ष मार्ग का सहायक है, कहा है। सम्यक् चरित्र गृहस्थ एवं सन्यासी दोनों के लिए पंचमहाव्रत का पालन आवश्यक कहा है। पंचमहाव्रत अहिंसा, सत्य, अस्तेय अपरिग्रह एवं ब्रह्मचर्य है। इन व्रतों का मनसा, वाचा एवं कर्मणा पालन करना चाहिए।

6- ज्ञान के साधन के रूप में समीक्षावाद का अर्थ समझाएं।

पाश्चात्य दर्शन में ज्ञान के साधन रूपी तीन सिद्धांतों की चर्चा हुई है— बुद्धिवाद, अनुभववाद एवं समीक्षावाद। समीक्षावाद वह ज्ञानमीमांसीय सिद्धांत है जिसके अनुसार ज्ञान न तो सिर्फ बुद्धि से होती है और न सिर्फ अनुभव से बल्कि ज्ञान का निर्माण या ज्ञान होने के लिए बुद्धि एवं अनुभव दोनों सहायक है। अनुभव ज्ञान का कच्चा माल देता है तो वही बुद्धि उसे कच्चे माल को ज्ञान के आकारों के सांचे से ज्ञान का निर्माण करता है। इसलिए कांट ने समीक्षावाद में संश्लेषणात्मक एवं विश्लेषणात्मक ज्ञान, प्रागनुभविक एवं आनुभविक ज्ञान तथा विज्ञान एवं गणित दोनों प्रकार ज्ञान को सम्मिलित किया है।

7- पर्यावरणीय नैतिकता का क्या अर्थ है?

नैतिकता कहने का अर्थ से प्रकट होता है कि सामाजिक एवं बौद्धिक प्राणी स्वरूप मनुष्य के लिए शुभ, उचित, अच्छे, धर्म, न्याय, कर्तव्य रूपी कर्म की बात कर रहे हैं। साथ किन कर्मों के करने से शुभ, उचित, अच्छे, धर्म, न्याय, कर्तव्ये कर्म होते हैं या इन कर्मों के करने का मापदण्ड क्या है इसकी चर्चा, व्याख्या, विश्लेषण करना नैतिकता है। परंतु नैतिकता मात्र बौद्धिक जीव—जंतुओं के लिए ही नहीं, बल्कि वनस्पति जगत के लिए, अजीव रूपी चीजों का शोषण व दोहन लेकर भी चर्चा एवं विश्लेषण का चर्चा होनी चाहिए। वनस्पति जगत के प्रति इस ब्रह्मांड में रहने वाले सबसे ज्यादा बौद्धिक प्राणी होने के नाते इनके उत्तरदायित्व, इनके प्रति भाव एवं आने वाले भविष्य में वनस्पति जगत के प्रति चुनौतियों आदि के प्रति व्यक्ति की संवेदनशीलता ही पर्यावरणीय नैतिकता है। भारतीय परंपराओं एवं संस्कृति में पुरातन कालों से ही मनुष्य अपने चारों ओर जीव, अजीव, भूमि, जल, वायु, अग्नि, आकाश, नदी, पहाड़ आदि सभी के सम्मान व पूजनीय माना है क्योंकि प्रकृति के साथ, वायुमंडल के साथ संतुलित व्यवहार एवं आपसी समन्वय करता है। जीओ और जीने दो, वसुधैव कुटुम्बकम्, सबका साथ, सबका विकास, सबका विश्वास एवं सबका प्रयास, सर्वमुक्ति, रामराज्य की स्थापना, सर्वे भवन्तु सुखिन आदि इसके संकेत रूपी साध्य रूपी कार्य एवं कर्म है। अतः पर्यावरणीय नैतिकता दर्शनशास्त्र का वह भाग है जो मानव और प्राकृति पर्यावरण के बीच नैतिक संबंधों को समझाता है।

8- मूल्य एवं शिक्षा के संबंधों को समझाएं।

मूल्य का अर्थ मानवीय मूल्य अर्थात् जीवन जीने के लिए सिद्धांतों, व्यवहारों, आदर्शों के साथ जीएं जिसमें मानव को शोषण दोहन न हो, जीओ और जीने दो का लक्ष्य हो, सभी को शिक्षा, स्वास्थ्य, आवास, भोजन मिलें सभी साथ—साथ मिल कर भाईचारे के साथ रहें आर्थिक संतुलन हो। इस तरह मानवीय मूल्यों के साथ शिक्षित हो जीएं अर्थात् सकारात्मक संस्कारित एवं आधारभूत शिक्षा हो तो सभी प्रकार के मूल्यों का ज्ञान होगा तो समाज में

सभी प्रकार के व सभी स्तर के समन्वय कर जीने के कला सीख सकते हैं। अतः मूल्य एवं शिक्षा में अन्योन्याश्रय संबंध है।

9- चार्वाक का तत्त्वमीमांसीय विचार क्या है?

चार्वाक भारतीय दर्शन के नास्तिक दर्शन है। चार्वाक प्रमाण में सिर्फ प्रत्यक्ष प्रमाणा पर विश्वास करता है अर्थात् ज्ञानेन्द्रियों के द्वारा जो प्रत्यक्ष होता है उसी की स्वीकार करता है। इसके अलावे किसी प्रकार की सत्ता पर विश्वास नहीं करता है। आंखों से सिर्फ पृथ्वी, जल, वायु, अग्नि का प्रत्यक्ष होता है इसलिए इन चीजों की ही सत्ता है। अन्य चीजें आत्मा, ईश्वर, चेतना, ब्रह्म आदि किसी चीज की सत्ता नहीं है। चार भूत ही मूलभूत चीजें हैं इन्हीं चार चीजों से सारे चीजें बनते और टूटते रहते हैं।

10- भारतीय दर्शन में ज्ञान प्राप्त के कितने प्रमाण स्वीकारे गए हैं?

भारतीय दर्शन में ज्ञान प्राप्त करने के छः प्रमाण या साधन स्वीकारे गए हैं— प्रत्यक्ष, अनुमान, शब्द, उपमान, अर्थापत्ति एवं अनुपलब्धि। चार्वाक केवल एक प्रमाण प्रत्यक्ष को, वैशेषिक एवं बौद्ध दर्शन दो प्रमाण प्रत्यक्ष एवं अनुमान एवं सांख्य दर्शन तीन प्रमाण प्रत्यक्ष, अनुमान एवं उपमान को, न्याय दर्शन चार प्रमाण प्रत्यक्ष, अनुमान, उपमान एवं शब्द एवं प्रभाकर मिश्र मीमांसक पांच प्रत्यक्ष, अनुमान, उपमान शब्द एवं अर्थापत्ति तथा कुमारिल भट्ट एवं वेदांती छः प्रमाण प्रत्यक्ष, अनुमान, उपमान शब्द अर्थापत्ति एवं अनुपलब्धि प्रमाण को स्वीकारता है।

लघुउत्तरीय प्रश्न खण्ड 'ब' (उत्तर 200 शब्दों में)

1- भारतीय दर्शन में प्रमा की व्याख्या करें।

भारतीय दर्शन में ज्ञान को यथार्थ और अयथार्थ दो वर्गों में रखते हैं यथार्थ ज्ञान को प्रमा कहते हैं तथा अयथार्थ ज्ञान को अप्रमा कहते हैं। न्याय दर्शन के अनुसार ज्ञान के विषय में यह भी कहा गया है कि बिना ज्ञाता और ज्ञेय के ज्ञान उत्पन्न नहीं हो सकता। ज्ञान को अंग्रेजी में नॉलेज कहते हैं और नॉलेज का अर्थ 'किसी तथ्य या सत्य का या अस्तित्ववान वस्तु का निश्चित प्रत्यक्षीकरण के अर्थ में होता है। ज्ञान के विभिन्न अर्थों में वस्तु या तथ्य के सत्य ज्ञान या निश्चित ज्ञान का अर्थ में ही किया गया है।

भारतीय दृष्टि से ज्ञान को विषय का प्रकाशक भी कहा गया है। 'तर्क कौमुदी' में कहा गया है 'अर्थ प्रकाशो बद्धिः' अर्थात् जो विषय हमारे लिए अब तक ज्ञान में नहीं है, अर्थात् जिनका हमें पता नहीं है, जिनके विषय में कुछ जानकारी नहीं है ज्ञान से उन

पर प्रकाश पड़ता है। इसीलिए ज्ञान को प्रकाशक कहा गया है। इसलिए ज्ञान को कही प्रमा कह दिया गया है तो कही ज्ञान को दो वर्गों में विभाजित किया है। दूसरे अर्थ वाला ज्यादा उपयुक्त प्रतीत होता है।

ज्ञान

अनुभव

स्मृति(अप्रमा)

यथार्थ (प्रमा) अयथार्थ

यथार्थ अयथार्थ

प्रत्यक्ष अनुमान उपमान शब्द अर्थापत्ति अनुपलब्धि संशय विपर्यय तर्क

भारतीय दर्शन में न्याय दर्शन में प्रमा यथार्थ ज्ञान है और अयथार्थ ज्ञान अप्रमा है। 'प्र' का अर्थ यथार्थ और 'मा' का अर्थ ज्ञान के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है। उदयन ने 'तात्पर्य परिशुद्धि' नामक ग्रंथ में कहा है। पदार्थों के वास्तविक स्वरूप का ज्ञान प्रमा है और इस प्रकार के ज्ञान के साधन को प्रमाण कहते हैं। 'तर्कसंग्रह' में कहा गया है— तदवतित् प्रकारकानुभवः प्रमा अर्थात् किसी वस्तु का अपने स्वरूप में ज्ञान यथार्थ अनुभव ही प्रमा है। प्रमा किसी वस्तु के असंदिग्ध तथा यथार्थ अनुभव को कहा जाता है।

प्रमा का स्वरूप अधिक स्पष्ट करने के लिए इसका अप्रमा से भेद जानना आवश्यक है। प्रमा के विषय में कहा जाता है कि यदि ज्ञान यथार्थ है तो प्रमा है। यदि अयथार्थ है तो अप्रमा है। उदाहरण के लिए प्रमा के द्वारा वस्तु के जिन गुणों का प्रकाशन होता है, वे वास्तव में उस वस्तु के अंदर रहते हैं। जब हम घड़े को घटत्व इत्यादि गुणों से युक्त देखते हैं तब हमारा ज्ञान प्रमा कहलाता है, क्योंकि ये गुण घड़े में वस्तुतः पाए जाते हैं। अप्रमा किसी वस्तु में ऐसे गुणों की कल्पना करना है जिनका उसमें अस्तित्व नहीं है। जब हम रस्सी को सांप समझ बैठते हैं तब हमारा ज्ञान अप्रमा होता है क्योंकि रस्सी में सांप के गुण नहीं होते। शंख को सफेद देखना प्रमा है लेकिन पीलिया के रोगी का शंख को पीला देखना अप्रमा है।

भारतीय दर्शन में प्रमा को 'यथार्थानुभवः प्रमा' के रूप में परिभाषित किया है। प्रमा को प्रमाणित करने को लेकर भारतीय दर्शन के संप्रदायों में मतैक्य नहीं है। न्याय दर्शन के अनुसार प्रमा जिस साधन से प्राप्त होता है जिस साधन से सिद्ध हो जाता है। परंतु अन्य दार्शनिक संप्रदाय इसके विपरीत है। इस कारण भारतीय दार्शनिक संप्रदायों में प्रमाओं को लेकर एकमत नहीं है। न्याय दर्शन चार प्रमाण को स्वीकार करते हैं वहीं वैशेषिक दर्शन एवं बौद्ध दो प्रमाण की चर्चा करते हैं। सांख्य तीन प्रमाण तो भट्ट मीमांसक एवं वेदांती छः प्रमाणा को स्वीकार करते हैं। छः प्रमाण प्रत्यक्ष, अनुमान, उपमान, शब्द, अर्थापत्ति, अनुपलब्धि

क्रमश है जो भारतीय दार्शनिक संप्रदाय अपने-अपने तत्वमीमांसा एवं ज्ञानमीमांसा को स्थापित करने के आधार पर प्रमाणों की संख्या को स्वीकार करते हैं।

2- ज्ञान के साधन के रूप बुद्धिवाद की व्याख्या करें।

पाश्चात्य दर्शन में ज्ञान प्राप्त करने के साधन या माध्यम की व्याख्या में तीन सिद्धांतों की चर्चा की गई है—बुद्धिवाद, अनुभववाद एवं समीक्षावाद। बुद्धिवाद के अनुसार ज्ञान प्राप्त करने का एकमात्र साधन बुद्धि है अर्थात् बुद्धिवाद वह ज्ञानमीमांसीय सिद्धांत है जिसके अनुसार बुद्धि ही वास्तविक ज्ञान का एक मात्र स्रोत है। बुद्धिवाद की मान्यता यह है कि वास्तविक ज्ञान की प्राप्ति इन्द्रियानुभव द्वारा कदापि नहीं हो सकती। इन्द्रियप्रत्यक्ष ज्ञान सदा सापेक्षिक एवं परेक्ष ज्ञान होता है इसलिए इसे वास्तविक ज्ञान की संज्ञा नहीं दी जा सकती। वास्तविक ज्ञान की प्राप्ति केवल बुद्धि-प्रत्ययों द्वारा ही संभव है। मनुष्य की बुद्धि को जन्म में ही कुछ मौलिक सत्यों की जानकारी होती है जिनके विश्लेषण एवं संश्लेषण से वह जगत के विषय में नवीन ज्ञान की सृष्टि करते हैं। दूसरे अर्थ में इस तरह भी कह सकते हैं कि बुद्धि ही एक मात्र तर्क शक्ति है जिसके द्वारा सर्वव्यापी, अनिवार्य एवं निश्चित ज्ञान प्राप्त किया जा सकता है। आधुनिक पाश्चात्य दर्शन में डेकार्ट्स, स्पेनुजा एवं लाइनिट्स बुद्धिवाद के प्रतिनिधि दार्शनिक कहे जाते हैं।

बुद्धिवाद की सामान्य मुख्य विशेषताएं

- 1- बुद्धि ही वास्तविक ज्ञान प्राप्त करने का एकमात्र साधन है।
- 2- हमारा समस्त ज्ञान प्राग्नुभव अर्थात् अनुभव-पूर्व होता है अर्थात् हमारा ज्ञान अनुभव से पहले ही होता है।
- 3- यह बुद्धि सदा सक्रिय, आत्मचेतन और अनुभव-निरपेक्ष होती है।
- 4- हमारी आत्मा में कुछ जन्मजात प्रत्यय होते हैं जैसे आत्मा का प्रत्यय, ईश्वर का प्रत्यय, अनश्रता का प्रत्यय, कार्य-कारण का प्रत्यय आदि।
- 5- इन्हीं जन्मजात प्रत्ययों से यथार्थ ज्ञान का निर्माण होता है। यह निर्माण निगमनात्म और अनतर्निरीक्षण की पद्धति से होता है।
- 6- जिस तरह मकड़ी अपने भीतर से जाले का निर्माण करती है उसी तरह बुद्धि अपने जन्मजात प्रत्ययों से समस्त ज्ञान का निर्माण करती हैं इसीलिए हमारे यथार्थ ज्ञान को अनुभव-पूर्व कहा गया है।

7- अनुभव कुछ के विषय में निर्णय दे सकता है इसलिए यह संदिग्ध एवं अनिश्चित ज्ञान देता है। परंतु बुद्धि सब के विषय में निर्णय देती है इसलिए बुद्धि सार्वभौम एवं यथार्थ ज्ञान देती है।

8- जिस तरह गणित के नियम सार्वभौम एवं अनिवार्य होते हैं उसी तरह हमारा समस्त बुद्धिजन्य ज्ञान सार्वभौम एवं अनिवार्य होता है।

9- इस तरह के ज्ञान की कोई सीमा नहीं है।

बुद्धिवादी दार्शनिक रेने डेकार्ट्स के विचार –

बुद्धिवादी दार्शनिक रेने डेकार्ट्स फ्रांसीसी दार्शनिक थे एवं गणित प्रेमी थे। गणित के निष्कर्षों की अकाट्यता से वे अत्यंत प्रभावित थे। यही कारण है कि दर्शन को भी वे गणित के समान बनाना चाहते थे। इसलिए इनके बुद्धिवाद को गणितशास्त्रीय बुद्धिवाद भी कहा जाता है। इनके अनुसार बुद्धि ही एकमात्र ज्ञान का एकमात्र स्रोत है। हमारी अंतस्त में कुछ जन्मजात प्रत्यय होते हैं। मैं हूँ, यह ज्ञान हमें इसलिए होता है क्योंकि 'मैं' अर्थात् आत्मा का प्रत्यय जन्मजात प्रत्यय होता है। इसी तरह ईश्वर के अस्तित्व में विश्वास भी हमें इसके जन्मजात प्रत्यय के आधार पर होता है। इन्हीं प्रत्ययों को जन्म के समय स्वयं ईश्वर हमारे मन पर अंकित कर देता है। इन जन्मजात प्रत्ययों को ज्ञान हमें हमारी बुद्धि देती है।

बुद्धिवादी दार्शनिक स्पीनुजा के विचार –

बुद्धिवाद के दूसरे महत्वपूर्ण दार्शनिक हॉलैंड वासी स्पीनुजा है। स्पीनुजा भी डेकार्ट से अत्यंत प्रभावित थे और इन्हीं के जैसे गणित-प्रेमी थे। इनके अनुसार जैसे रेखागणित में कुछ स्वयं सिद्धियां पहले से मान ली जाती हैं फिर उससे सत्य निष्कर्ष निकाले जाते हैं। बाह्य जगत में हम इन्हीं प्रत्ययों का प्रतिरूप देखते हैं। स्पीनुजा भी कहते हैं कि इन्द्रियां सत्य ज्ञान देने में असमर्थ होती हैं। हम अपनी इन्द्रियों की सहायता से जिस जगत को देखते हैं, वह भ्रामक, क्षणिक और अस्थायी है। साथ ही यह मनुष्य के लिए दुःखदायी भी है कि मनुष्य सच्चा सुख, तभी सुख प्राप्त कर सकता है जब उसे सत्य का, ईश्वर और आत्मा के यथार्थ स्वरूप का ज्ञान हो जाए। यह ज्ञान मनुष्य की बुद्धि ही दे सकती है।

बुद्धिवादी दार्शनिक लाइबनिट्स के विचार

जर्मन दार्शनिक लाइबनिट्स आधुनिक पाश्चात्य दर्शन के तीसरे बुद्धिवादी दार्शनिक है। इनके अनुसार प्रत्यय ज्ञान प्राप्ति के लिए आवश्यक होते हैं परंतु किसी के मन में चेतना के धरातल पर होते हैं तो किसी के अचेतन के धरातल पर। यही कारण है कि बालक, मूर्ख और

पागल इनसे अनभिज्ञ होते हैं। अतः इन्होंने भी डेकार्ट्स एवं स्पीनुजा के समान जन्मजात प्रत्ययों के अस्तित्व को स्वीकार करते हैं। उनका मत है कि कुछ प्रत्यय तो ऐसे होते हैं जिन्हें हम अनुभव के द्वारा प्राप्त ही नहीं कर सकते जैसे सामान्य का प्रत्यय। हम हजारों मनुष्यों को मरते हुए देखकर भी यह नहीं कह सकते कि मनुष्य मरणशील है, जब तक कि हमारी बुद्धि में इस प्रकार को कोई सामान्य भाव न हो। इसलिए लाइबनिट्स अनुभव को बिल्कुल व्यर्थ नहीं कहते। वे स्वीकार करते हैं कि ऐन्द्रिक बोध जरूरी है क्योंकि इनके आने पर ही उत्तेजित होकर भाव जागते हैं। यद्यपि ऐन्द्रिक बोधों से हमें विशेष घटनाओं का ही ज्ञान होता है, किंतु ये घटनाएं ही हमारे सुप्त सामान्य भावों को जगाती हैं। ””

3- चार्वाक दर्शन के नीतिमीमांसीय विचार की व्याख्या करें।

भारतीय दर्शन के संप्रदायों में चार्वाक दर्शन भी एक महत्वपूर्ण दर्शन है। भारतीय दर्शन में चार्वाक दर्शन एक भौतिकवादी, जड़वादी या देहात्मवादी दर्शन माना जाता है। चार्वाक दर्शन अनीश्वरवाद, प्रत्यक्षवाद, सुखवाद के समर्थक हैं। जड़वाद के अनुसार जड़ पदार्थ ही जगत का अन्तिम उपादान है वही चरम सत्ता है, इसी जड़ सत्ता से जगत की उत्पत्ति हुई है, जड़ सत्ता से ही प्राण और मन या चित्त शक्ति आदि की उत्पत्ति हुई है। चार्वाक भी इस तरह के विचार का समर्थन करने के कारण इन्हें जड़वादी दर्शन कहा जाता है। चार्वाक दर्शन को 'नास्तिक शिरोमणि' कहा जाता है क्योंकि नास्तिक होने के तीन शर्तों को पूरा करते हैं। नास्तिक का तीन अर्थ हैं 1. जो ईश्वर की सत्ता पर विश्वास नहीं करते हैं। 2. जो अपने दार्शनिक सिद्धांतों का आधार या प्रमाण वेदादि को मानते हैं। 3. जिन्हें पुण्य, पाप की सत्ता पर विश्वास नहीं है। चार्वाक इन तीनों शर्तों को पूरा करता है इसलिए इन्हें नास्तिक शिरोमणि कहा जाता है।

चार्वाक दर्शन को लोकायत भी कहा जाता है। इसका कारण यह है कि चार्वाक के मत 'खाओ, पीओ और मौज करो' संसार या लोक में आसानी से व्याप्त है जो मत सामान्य जन को स्वीकार थे। इनके दर्शन को नियतिवाद, स्वभाववाद एवं यदृच्छावाद के भी समर्थक हैं।

चार्वाक के नीतिमीमांसीय विचार उनके तत्त्वमीमांसीय एवं ज्ञानमीमांसीय विचार पर आधारित है। इनके अनुसार सुख की प्रत्यक्ष की अनुभूति होती है। ईश्वर और परलोक तथा मोक्ष की बात करना व्यर्थ है। भौतिकवादी दृष्टिकोण से ईश्वर की चर्चा करना व्यर्थ है परलोक और मोक्ष की बात गलत है। चार्वाक धर्म और मोक्ष का खंडन करते हैं। उनके अनुसार केवल सुख प्राप्त करना जीवन का लक्ष्य है। चार्वाक के सुखवादी विचार के अनुसार 'जब तक जीवन रहे सुख से जीना चाहिए, ऐसा कोई नहीं जिसके पास मृत्यु न जा सके। जब शरीर एक बार जल जाता है तब इसका पुनः इसका आगमन कैसे हो सकता है?' चार्वाक का सुखवाद स्थूल सुखवाद है। यह निजी सुख पर मूलरूप से शारीरिक सुख पर अधिक बल देता है। स्त्री आदि

के आलिंगनादि से उत्पन्न सुख ही परम पुरुषार्थ है। दूसरा कोई पुरुषार्थ नहीं है। भारतीय दर्शन में चार पुरुषार्थ की चर्चा की गई है— धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष। चार्वाक के अनुसार काम ही एकमात्र परम पुरुषार्थ हैं, इनके अलावा शेष तीन पुरुषार्थ धर्म, अर्थ एवं मोक्ष को किसी दृष्टिकोण से स्वीकार नहीं करते।

इस प्रकार चार्वाक के सुखवादी नीतिशास्त्र यूरोप के एरिस्टीप्पस के स्थूल स्वार्थमूलक सुखवाद से समानता रखता है। भारतीय दर्शन में स्थूल स्वार्थमूलक सुखवाद के प्रवर्तक चार्वाक को माने जा सकते हैं। चार्वाक का कहना यह भी है कि ऐसा नहीं समझना चाहिए कि दुःख से मिला जुला होने के कारण सुख पुरुषार्थ नहीं हैं, क्योंकि हम लोग सुख के साथ अनिवार्य रूप से मिले जुले दुःख को हटा कर केवल सुख का ही उपभोग कर सकते हैं। ऐसा कोई सुख संसार में नहीं जो केवल सुख का ही आनंद लिया जा सकता है। जैसे मछली चाहने वाला व्यक्ति छिलके और कांटों के साथ ही मछलियों को खाते हैं। इसी तरह धान की चाह करने वाल पुआल से धान हटाने पड़ते हैं। इसलिए दुःख के भय से मन के अनुकूल लगने वाले सुख को छोड़ना ठीक नहीं है। दुःख मिश्रित सुख को प्राप्त कर ही लेना चाहिए। सुख में दुःख मिले होने के भय से सुख त्याग देना मूर्खता होगी।

वैदिक मत में नैतिक दृष्टि से मोक्ष को परम पुरुषार्थ माना गया है, किंतु चार्वाक के अनुसार धर्म का विचार वेद से प्राप्त होने के कारण भ्रांतिमूलक है। वेद तो अप्रामाणिक ग्रंथ है। चूँकि वेदों की रचना ब्राह्मणों ने की है और अपने जीवन—निर्वाह के लिए धर्म—अधर्म, पाप—पुण्य, स्वर्ग—नरक का अंतर बताकर लोगों को ठगने का उपाय किया है। मोक्ष और स्वर्ग—नरक तथा पुनर्जन्म के विषय में चार्वाक मत इस प्रकार है — “भौतिक कारणों से उत्पन्न भौतिक दुःख ही नरक है। संसार में स्वीकृत राजा ही परमेश्वर है। संसार का नियंता, उत्पत्ति, पालन और संहारकर्ता, पुनर्जन्म का प्रदाता ईश्वर नहीं, क्योंकि उत्पत्ति आदि तो स्वाभाविक हैं, पुनर्जन्म है ही नहीं। देह ही आत्मा है। अतः देह या आत्मा का विनाश ही मोक्ष है। ज्ञान से मुक्ति नहीं होती। पुनः वृहस्पति ने कहा है कि “न तो स्वर्ग है न अपवर्ग या मोक्ष और न परलोक में रहने वाला आत्मा। वर्ण, आश्रम अदि की क्रियाएं भी फल देने वाली नहीं हैं।” इसी प्रकार यज्ञ, संन्यास, यजमान, बलि आदि की निंदा करते हुए चार्वाक इनका निराकरण करते हैं। चार्वाक के अनुसार “अग्निहोत्र, तीनों वेद, तीन दण्ड धारण करना और भस्म लगाना ये बुद्धि और पुरुषार्थ से रहित लोगों की जीविका के साधन हैं, जिन्हें ब्रह्मा ने बनाया। यदि यज्ञ में मारा गया पशु स्वर्ग जाएगा तो उस जगह पर यजमान अपने पिता को ही क्यों नहीं मार डालता? श्राद्ध—क्रिया की निरर्थकता सिद्ध करते हुए चार्वाक कहते हैं कि श्राद्ध से तृप्ति संभव नहीं है। यदि मरे हुए प्राणियों को श्राद्ध से तृप्ति मिले तो बूझे हुए दीपक की शिखा को तो तेल अवश्य ही बढ़ा देगा।” श्राद्ध के विषय में ही पुनः कहा गया है कि “विदेश जाने वाले लोगों के लिए मार्ग का भोजन देना व्यर्थ है। घर में किए गए श्राद्ध से ही रास्ते में तृप्ति मिल जाएगी। दान देने की निरर्थकता के विषय में कहा गया कि “स्वर्ग में स्थित पितृगण यदि यहाँ

दान कर देने से तृप्त हो जाते हैं तो महल के ऊपर बैठे हुए लोगों को यहीं पर क्यों नहीं देते हैं।” इस प्रकार स्वर्ग—नरक, यज्ञ और श्राद्ध आदि की क्रियाओं की निंदा करते हुए चार्वाक अपने सुखवादी नैतिक आदर्श को पुनः दुहराते हुए कहते हैं कि

“यावज्जीवेत्सुखं जीवेदृणं कृत्वा घृतं पिबेत्।

भस्मीभूतस्य देहस्य पुनरागमनं कुतः?”

अर्थात् जब तक जीना है सुख से जीना चाहिए, ऋण लेकर भी घी पीना चाहिए क्योंकि मरने पर भस्म के रूप में परिणत शरीर फिर संसार में ऋण शोध कैसे आ सकता है? पुनः कहते हैं कि “यदि आत्मा शरीर में पृथक है और शरीर से निकलकर दूसरे लोक में चला जाता है, तब बंधुओं के प्रेम से व्याकुल होकर लौट क्यों नहीं आता?”

4- कांट दर्शन के नैतिक सिद्धांत कर्तव्य, कर्तव्य के लिए व्याख्या करें।

आधुनिक पाश्चात्य दर्शन के इतिहास में इमानुअल कांट (1724—1804) के ज्ञानमीमांसीय एवं नीतिमीमांसीय विचार एक मानक विचार है जिसे सभी दार्शनिक इनके द्वारा उठाए गए सिद्धांतों, प्रत्ययों एवं व्याख्याओं को नए सिरे से सोचने का मजबूर किया है। कांट के नैतिक विचार ‘ग्राउंडवर्क ऑफ दि मेटाफिजिक्स ऑफ मॉरल्स’ एवं ‘क्रिटिक्स ऑफ प्रैक्टिकल रीजन’ पुस्तक पर आधारित है। कांट के तीन महत्वपूर्ण विचार पर उनका नैतिक विचार समाहित है। 1. कांट का निरपेक्ष आदेश, 2. कांट का शुभ संकल्प एवं 3. कांट का कर्तव्य, कर्तव्य के लिए सिद्धांत।

आधुनिक पाश्चात्य दर्शन में नैतिक दर्शन के मानक संबंधी सिद्धांत दो तरह के सिद्धांत प्रचलित है— प्रयोजनवादी या परिणामवादी नैतिक सिद्धांत एवं कर्तव्यवादी सिद्धांत। प्रयोजनवादी सिद्धांत के अनुसार मानव के सारे कर्म बिना प्रयोजन के नहीं होते। कोई कर्म चाहे सुख की कामना के लिए हो, चाहे विकास के लिए की जाती हो, चाहे वह आत्मपूर्णता क लिए किया जाता हो, चाहे ज्ञान प्राप्ति के लिए हो या अन्य उद्देश्य की प्राप्ति के लिए हो। सारे कर्म या मानक कर्मों के करने के बाद उसके परिणाम को देखकर सुखों के आकलन कर या अन्य लक्ष्यों के परिणाम के परिकलन ही कर्मों को शुभ, अशुभ, अच्छे, बुरे, उचित, अनुचित कहा जाता है। दूसरी ओर इस परिणामवादी प्रयोजनवादी नैतिक सिद्धांत के विरुद्ध नैतिक सिद्धांत कर्तव्यवादी सिद्धांत है जिसके अनुसार कोई कर्म व्यक्ति के अंतःअनुभूति की आवाज है जिसमें उसकी अंतःकरण व्यावहारिक बुद्धि से युक्त होकर निकलता है। इस प्रकार के कर्म में किसी प्रकार का बाह्य हस्तक्षेप नहीं होता है। अतः कांट के अनुसार अंतःकरण का नियम ही नैतिक मापदंड है। कांट कहते हैं कि बुद्धि मानव प्रकृति का सबसे आवश्यक तत्व है। भावना को कुचलकर शुद्ध बुद्धि का जीवन व्यतीत करना चाहिए।

कांट के अनुसार नैतिक नियम शुभ संकल्प का निरपेक्ष आदेश है। नैतिक नियम एक आदेश है, किसी तथ्य की अभिव्यक्ति नहीं। पुनः यह आदेश निरपेक्ष है, सापेक्ष नहीं। मतलब यह कि इस आदेश का पालन किसी शर्त पर निर्भर नहीं करता। इसका पालन हम किसी बाह्य लक्ष्य की प्राप्ति के लिए नहीं करते। नैतिक नियम का ज्ञान व्यावहारिक बुद्धि द्वारा होता है। व्यावहारिक बुद्धि सामान्य है अर्थात् सभी मनुष्यों में पाई जाती है। अतः नैतिक नियम भी सामान्य है। हमारी बुद्धि सहज रूप से नैतिक नियमों को जान लेती है। अतः नैतिक नियम स्वतः स्पष्ट, बौद्धिक तथा प्रागनुभविक होते हैं।

कांट कहते हैं कि नैतिक नियम के पीछे जो संकल्प होता है वह स्वतंत्र होता है, परतंत्र नहीं। परतंत्र संकल्प से उनका तात्पर्य वैसे संकल्प से है जो किसी बाह्य लक्ष्य की प्राप्ति के लिए किया जाता है। यह संकल्प स्वतंत्र है, स्वतः शुभ है।

कर्त्तव्य, कर्त्तव्य के लिए सिद्धांत

कांट भावना के पूर्ण विनाश की शिक्षा देते हैं। इनके अनुसार संकल्प तभी स्वतंत्र होता है जब वह कर्त्तव्य के विचार से प्रेरित होता है। 'कर्त्तव्य, कर्त्तव्य के लिए' सच्चे नैतिक नियम है। हमें कर्त्तव्य का पालन मात्र कर्त्तव्य के विचार से करना चाहिए किसी भावना से प्रेरित होकर नहीं या किसी लक्ष्य की प्राप्ति के विचार से नहीं। अपने कर्त्तव्य का पालन एक निरपेक्ष आदेश है अर्थात् कर्म का फल जो भी हो प्रत्येक परिस्थिति में हमें अपने कर्त्तव्य का पालन करना चाहिए। कांट के अनुसार कोई कर्म तभी उचित होता है जब वह मात्र कर्त्तव्य के लिए किया जाता है। हमें फल की चिंता किए बिना कर्त्तव्य का पालन करना चाहिए। कांट बड़ी कठोरता से कहते हैं कि "यदि आकाश धरातल पर भी चला आए तो भी मैं कर्त्तव्य का पालन अवश्य करूँगा। इनके अनुसार नैतिक जीवन में भावना और संवेग का कोई स्थान नहीं है। प्रेम या करुणा की भावना भी अनैतिक है। यदि कोई व्यक्ति प्रेम की दया की भावना से किसी रोगी की सेवा करता है या किसी गरीब की सहायता करता है तो कांट के अनुसार यह कर्म नैतिक नहीं है। कांट केवल नैतिक नियम के प्रति आदर की भावना को ही नैतिक मानते हैं। इस प्रकार कांट अपने नीतिशास्त्र में भावनाओं के पूर्ण विनाश तथा शुद्ध बौद्धिक जीवन व्यतीत करने की शिक्षा देते हैं। इसी कारण कांट के नैतिक दर्शन को नैतिक कठोरतावाद या नैतिक सन्यासवाद कहा जाता है।

उपर्युक्त कांट के नैतिक दर्शन के तीन नियम निरपेक्ष आदेश, शुभ संकल्प एवं कर्त्तव्य, कर्त्तव्य के लिए सिद्धांत आपस में अंतर्निहित है। निरपेक्ष आदेश ही शुभ संकल्प हैं और शुभ संकल्प का आदेश ही कर्त्तव्य का पालन है और पहले कर्त्तव्य का पालन, कर्त्तव्य के लिए ही करते हैं। जो व्यावहारिक बुद्धि के द्वारा पालन करने का आदेश देता है। अतः कर्त्तव्य की चेतना में सभी प्रकार की बाधाओं पर विजय प्राप्त करने का अथवा बाध्यता का तत्व निहित

रहता है। कांट का कथन है कि मनुष्य पूर्णतः बौद्धिक प्राणी होता और उसकी इच्छाएं, भावनाएं तथा प्रवृत्तियां उसके शुभ संकल्प की अभिव्यक्ति में बाधा न डालती तो उसके लिए कर्त्तव्य तथा उसकी बाध्यता की कोई आवश्यकता न होती। इस प्रकार कांट के विचार में केवल अंशतः बौद्धिक प्राणी होने के कारण मनुष्य कर्त्तव्य की चेतना द्वारा बाध्य होकर शुभ संकल्प के अनुरूप कर्म करता है।

इस प्रकार कांट के नैतिक सिद्धांत कर्त्तव्य, कर्त्तव्य के लिए सिद्धांत न तो सुखवाद की तरह है न तो आत्मपूर्णतावाद की तरह है न तो विकासवादी सुखवाद की तरह है बल्कि कांट का कर्त्तव्य, कर्त्तव्य के लिए सिद्धांत भारतीय दर्शन की गीता दर्शन के निष्काम की तरह प्रतीत होता है।

”

दीर्घउत्तरीय प्रश्न 'खण्ड 'स' (उत्तर 600 से 1000 शब्दों में)

1- न्याय दर्शन के अनुसार प्रत्यक्ष प्रमाण के विभिन्न प्रकारों की समीक्षात्मक व्याख्या करें।

भारतीय दर्शन के विभिन्न संप्रदायों में षड् आस्तिक दर्शन में एक न्याय दर्शन है जिसे भारतीय ज्ञानमीमांसा में महत्वपूर्ण निभाई है। न्याय दर्शन को अक्षपाद दर्शन, अन्वीक्षकी दर्शन भी कहा जाता है। इस दर्शन के प्रणेता महर्षि गौतम हैं जो 200 ई० पू० के माने जाते हैं। प्रमाणों को संग्रह करके उनसे प्रमेय वस्तु की परीक्षा करने के कारण इस दर्शन का न्याय दर्शन नाम पड़ा। न्याय दर्शन तत्व ज्ञान की प्राप्ति करना चाहता है और इसी के लिए यथार्थ ज्ञान और उसके नियमों का जानना आवश्यक है। मोक्ष या अपवर्ग की प्राप्ति तत्वज्ञान अर्थात् वस्तुओं के वास्तविक स्वरूप के ज्ञान से ही हो सकती है। इसीलिए न्याय दर्शन में सोलह पदार्थों की व्याख्या की गई है।

न्याय दर्शन के ज्ञानमीमांसा के अंतर्गत प्रमाणमीमांसा सबसे महत्वपूर्ण है। वैध ज्ञान को प्रमा कहते हैं वैध ज्ञान प्राप्त करने के साधन को प्रमाण कहते हैं। न्याय दर्शन के अनुसार चार प्रमाण स्वीकार किए गए हैं। प्रत्यक्ष, अनुमान, उपमान एवं शब्द। प्रश्न के अनुसार प्रत्यक्ष क्या है एवं विभिन्न प्रकारों की व्याख्या अपेक्षित है। भारतीय दर्शन में प्रत्यक्ष एक मात्र ऐसा प्रमाण है जिसे सभी दार्शनिक संप्रदायों ने स्वीकार किया है। प्रत्यक्ष की कुछ विशेष बातें हैं। प्रत्यक्ष से उत्पन्न ज्ञान का नाम भी प्रत्यक्ष ही है इसलिए प्रत्यक्ष प्रमा एवं प्रमाण दोनों हैं। प्रत्यक्ष से उत्पन्न ज्ञान निश्चित, संदेहरहित तथा यथार्थ होता है।

प्रत्यक्ष की परिभाषा

महर्षि गौतम के अनुसार— “इन्द्रियार्थ सन्निकर्षजन्यज्ञानं प्रत्यक्षम्” अर्थात् जो ज्ञान इन्द्रिय और विषय के सन्निकर्ष से उत्पन्न होते हैं, उसे प्रत्यक्ष कहा जाता है। जैसे कान से सुनने का, आंखों से रंगों का, रसना से स्वाद या मीठा—खट्टा का ज्ञान, नाक से गंध का ज्ञान, त्वचा से स्पर्श कठोर—कोमल का ज्ञान होता है। ये सारे ज्ञान ज्ञानेन्द्रियों के सन्निकर्ष होते हैं और यही प्रत्यक्ष है।

आचार्य विश्वाथ के अनुसार ज्ञानाकरणकं ज्ञानं प्रत्यक्षम् अर्थात् ‘प्रत्यक्ष वह अपरोक्ष ज्ञान है जो ज्ञानांतर जन्य नहीं है।’

तर्कसंग्रह के रचनाकार **अन्नमभट्ट** के अनुसार— “इन्द्रियार्थसन्निकर्षजन्यं ज्ञानं प्रत्यक्षम्” अर्थात् इन्द्रिय और अर्थ या विषय के सन्निकर्ष से उत्पन्न ज्ञान प्रत्यक्ष है।

नव्य नैयायिक **गंगेश उपाध्याय** के अनुसार — ‘प्रत्यक्षस्य साक्षात्कारित्वं लक्षणम्’ अर्थात् इन्द्रिय— वस्तु—सन्निकर्ष प्रत्यक्ष का सामान्य लक्षण नहीं है, वे विषय की साक्षात् प्रतीति को प्रत्यक्ष का सामान्य लक्षण माने है।, साक्षात्कारित्व ही प्रत्यक्ष का लक्षण है।

न्याय दर्शन में सन्निकर्ष के छः भेदों के चर्चा हुई है — संयोग, संयुक्त समवाय, संयुक्त सतवेत् समवाय, समवाय, समवेत् समवाय एवं विशेषण—विशेष्य भाव।

न्याय दर्शन के प्रत्यक्ष को दो वर्गों में विभाजित किया गया है— लौकिक प्रत्यक्ष एवं अलौकिक प्रत्यक्ष।

1- लौकिक प्रत्यक्ष—जब वस्तु का इन्द्रिय से साधारण संपर्क होता है तो उसे लौकिक प्रत्यक्ष कहते हैं।

2- अलौकिक प्रत्यक्ष— जब इन्द्रिय का संपर्क वस्तु या विषय से असाधारण ढंग से होता है तब उसे अलौकिक प्रत्यक्ष कहते हैं।

लौकिक प्रत्यक्ष के दो भेद किए गए हैं — प्रथम बाह्य प्रत्यक्ष, दूसरा आंतरिक प्रत्यक्ष। बाह्य प्रत्यक्ष उसे कहते हैं जब इन्द्रियों का संपर्क वस्तु से होता है। चूँकि ज्ञानेन्द्रियाँ पाँच प्रकार के होते हैं, अतः बाह्य प्रत्यक्ष भी पाँच प्रकार का होता है। आंख, कान, नाक, जीभ तथा त्वचा से जब बाह्य वस्तु का संपर्क होता है तो इन इन्द्रियों से जनित प्रत्यक्ष पाँच बाह्य प्रत्यक्ष होते हैं। आंतरिक प्रत्यक्ष मन के द्वारा होता है, क्योंकि मन को एक प्रत्यक्ष कहते हैं। मन के द्वारा आंतरिक अनुभूतियों जैसे राग, द्वेष, सुख, दुःख अच्छा आदि का ज्ञान होता है, अतः इसे आंतरिक प्रत्यक्ष या मानस प्रत्यक्ष कहते हैं।

लौकिक प्रत्यक्ष को दूसरे दृष्टिकोण से तीन भेद किए गए हैं – निर्विकल्पक प्रत्यक्ष, सविकल्पक प्रत्यक्ष एवं प्रत्यभिज्ञा।

क) निर्विकल्पक प्रत्यक्ष वह है जिसमें विषय या वस्तु का केवल आभास होता है, इसमें हमें वस्तु का पूर्ण ज्ञान अथवा उसके विशिष्ट गुणों का ज्ञान नहीं होता इसमें विषय के रूप, गुण, आकार, प्रकार आदि का ज्ञान नहीं होता।

ख) सविकल्पक प्रत्यक्ष में वस्तु का स्पष्ट और निश्चित ज्ञान होता है न कि केवल आभास होता है। इसमें वस्तु के गुणों का, आकार-प्रकार का स्पष्ट ज्ञान होता है।

ग) प्रत्यभिज्ञा – प्रत्यभिज्ञा का अर्थ है किसी मनुष्य को हमने अतीत में कभी देखा था तो उसे देखते ही जब हमें यह ज्ञान हो जाय कि यह वही मनुष्य है जिसे हमने पहले देखा था, तो यह ज्ञान प्रत्यभिज्ञा कहलाता है। नैयायिकों ने प्रत्यक्ष का यह भेद बौद्ध एवं वेदांती नहीं स्वीकारते हैं।

अलौकिक प्रत्यक्ष में इन्द्रियों का संबंध लौकिक प्रत्यक्ष की तरह विषयों से लौकिक रूप में नहीं होता, वरन् अलौकिक प्रत्यक्ष में इन्द्रियों का विषयों के साथ अलौकिक या असाधारण संबंध होता है इसीलिए इसे अलौकिक प्रत्यक्ष की संज्ञा दी गई है। अलौकिक प्रत्यक्ष तीन प्रकार का होता है। सामान्य लक्षण, ज्ञान लक्षण एवं योगज।

अ) सामान्य लक्षण प्रत्यक्ष से जाति का प्रत्यक्ष होता है या सामान्य गुणों या सामान्य लक्षण का प्रत्यक्ष होता है। इसलिए इसे सामान्य लक्षण प्रत्यक्ष कहते हैं। हम विभिन्न नामों वाले मनुष्यों में मनुष्यत्व का प्रत्यक्ष करते हैं। मनुष्यत्व मानव जाति का सामान्य लक्षण है। इस सामान्य लक्षण के प्रत्यक्ष से हम अनेक मनुष्यों को राम, श्याम, मोहन आदि मनुष्य की संज्ञा इसलिए देते हैं या उन्हें मनुष्य के रूप में इसलिए प्रत्यक्ष करते हैं कि उनमें 'मनुष्यत्व सामान्य लक्षण का प्रत्यक्ष करते हैं। व्यक्ति के प्रत्यक्ष से संपूर्ण मानव जाति का प्रत्यक्ष हो जाता है। सामान्य लक्षण प्रत्यक्ष के आधार पर ही हम कह सकते हैं कि सभी मनुष्य मरणशील हैं।

ब) ज्ञान लक्षण प्रत्यक्ष वह अलौकिक प्रत्यक्ष है जिसके द्वारा ज्ञानेन्द्रियां अपने विषय का ज्ञान तो करती ही है, इसके अतिरिक्त अपने से भिन्न विषय का भी ज्ञान प्राप्त करती है। आंख से रूप का ज्ञान, कान से शब्द का कान, नाक से गंध का ज्ञान, जीभ से स्वाद का ज्ञान एवं त्वचा से स्पर्श का ज्ञान, सभी ज्ञानेन्द्रियों का विशेष स्वभाव एवं विशेष गुण का ज्ञान कराती है। पांच ज्ञानेन्द्रियां एवं पांच विशेष स्वभाव या गुणों का ज्ञान कराती है जो वस्तुओं में मौजूद रहता है। परंतु यदि आंखों से रूप के अलावे कोमलता का ज्ञान भी हो जाए अर्थात् एक इन्द्रिय का विशेष गुण का ज्ञान के अलावे दूसरे इन्द्रिय के विशेष गुण का ज्ञान कराता है तो उसे ज्ञान लक्षण प्रत्यक्ष कहा जाता है।

स) योगज प्रत्यक्ष वह अलौकिक प्रत्यक्ष है जिससे गूढ तथा सूक्ष्म, भूत तथा भविष्य, निकट तथा दूर की वस्तुओं का ऐसे लोगों को प्रत्यक्ष होता है, जिन्हें योगाभ्यास से अलौकिक शक्ति प्राप्त होती है। योग में सिद्ध होने पर योगज प्रत्यक्ष होता है। योग की शक्ति से प्राप्त प्रत्यक्ष योगज प्रत्यक्ष है और इस शक्ति का कभी विनाश नहीं होता है। जिस व्यक्ति को यह शक्ति प्राप्त होती है उसे 'युक्त' कहते हैं। योग में आंशिक शक्ति प्राप्त व्यक्ति को 'युंजान' कहते हैं। वंदांती न्याय के इस सामान्य लक्षण प्रत्यक्ष एवं ज्ञान लक्षण प्रत्यक्ष का नही स्वीकार करते हैं।

समीक्षा

1- अद्वैत वेदांती शंकराचार्य के अनुसार सामान्य लक्षण प्रत्यक्ष अनावश्यक है।

2- नैयायिकों का यह कथन कि निर्विकल्पक प्रत्यक्ष में सफल प्रवृत्ति सामर्थ्य नहीं होता है, समीचीन नहीं है।

3- बौद्धों के अनुसार ज्ञान के लिए निर्विकल्पक प्रत्यक्ष ही पर्याप्त है।

4- अद्वैत वेदांती शंकराचार्य के अनुसार प्रत्यभिज्ञा एक तह का सविकल्पक प्रत्यक्ष है। इसमें पहले से ज्ञात वस्तु ही वर्तमान उपस्थित वस्तु है।

2- बौद्ध दर्शन के अष्टांगिक मार्ग की व्याख्या करें।

भारतीय दर्शन के संप्रदायों में अहिंसावादी दर्शन में महत्वपूर्ण दर्शन बौद्ध दर्शन है। बौद्ध दर्शन ने मानव जीवन के दुःखों से मुक्ति पाने का दर्शन है। बौद्ध दर्शन के संस्थापक गौतम बुद्ध ने एक दिन एक वृद्ध, एक रोगी, एक शव तथा एक संन्यासी को देखा। इन दृश्यों को देखने के बाद संसार के बंधनों तथा अनन्त दुःखों से बचने का मार्ग ढूंढने के लिए राजमहल के वैभव से मोह टूट गया और इसी के खोज के लिकल पडा।

बुद्ध को बोधि-प्राप्ति में चार आर्य-सत्यों का उपदेश दिया गया है जो निम्नलिखित है -

1- **प्रथम आर्य सत्य**- संसार दुःखों से भरा हुआ है। अर्थात् दुःख है।

2- **द्वितीय आर्य सत्य**- दुःखों का कारण है। अर्थात् दुःख समुदाय है इसी आर्य सत्य में दुःखों के बारह कारण गिनाए गए हैं जिसे द्वादश निदान कहा जाता है।

3- **तृतीय आर्य सत्य** - दुःखों का समाप्त होना संभव है। अर्थात् दुःख निरोध संभव है। इस आर्य सत्य में निर्वाण, परिनिर्वाण की व्याख्या हुई है। प्रतीत्यसमुत्पाद की चर्चा भी हुई है।

4- **चतुर्थ आर्य सत्य** – दुःखों के अंत का मार्ग है अर्थात् दुःख के निरोध मार्ग है। इसी आर्य सत्य में अष्टांगिक मार्ग की चर्चा हुई है।

बुद्ध के अष्टांगिक मार्ग

बुद्ध का मार्ग सैद्धांतिक नहीं, व्यावहारिक है। निराशावादी नहीं, आशावादी है। बुद्ध ने मनुष्य को असीम दुःखों के सागर से बाहर निकल जाने का मार्ग भी बतलाया है। सम्यक् ज्ञान ही दुःखनिरोध का उपाय तबता है। अज्ञान का नाश ज्ञान से ही हो सकता है। यदि आत्म तत्व का ज्ञान हो जाय तो इस ज्ञान से दुःख का भी नाश हो सकता है। यह ज्ञान आत्म तत्व के ज्ञान के लिए आवश्यक है कि मनुष्य संयम और साधना करें। इसके लिए बुद्ध ने सम्यक् चरित्र पर बल दिया है। चरित्र के लिए कठोर संयम और त्याग की आवश्यकता है। यहां बुद्ध अष्टांगिक मार्ग की शिक्षा देते हैं। इस मार्ग में मनुष्य का जीवन चरित्र निर्माण की ओर ही ढ़िता है। यह मार्ग न बहुत कठोर है और न सरल इसे ही 'मध्यम मार्ग' कहा गया है। इसे ही मध्यम प्रतिपदा भी कहा गया है। बौद्ध धर्म के अष्टांगिक मार्ग निम्नलिखित है –

1- **सम्यक् दृष्टि** – बुद्ध के अनुसार सम्यक् दृष्टि का अर्थ है चार आर्य सत्यों का ज्ञान। इसके साथ-साथा मनुष्य का प्रतीत्यसमुत्पाद, क्षणिकवाद, अनात्मवाद, मध्यममार्ग यदि बुद्ध के उपदेशों का स्पष्ट ज्ञान होना चाहिए। संसार के विषय में वास्तविक, अवास्वविक ज्ञान अनात्म एवं आत्म ज्ञान के अंतर एवं सम्यक् ज्ञान को ठीक-ठाक, उचित ज्ञान को समझना ही सम्यक् दृष्टि ही है इसी व्यक्ति के दृष्टिकोण स्पष्ट होगा।

2- **सम्यक् संकल्प** – सम्यक् संकल्प का अर्थ सुविचारित निश्चय है, अर्थात् सम्यक् दृष्टि के बाद हमारा मन शुद्ध वासनाओं से मुक्त होकर चार आर्य सत्यों का पालन करने का दृढ़ संकल्प या निश्चय करें। साथ ही हमें यह भी संकल्प करना चाहिए कि ऐसी क्रिया न करें जिससे हिंसा हो, वासना जगे या कोई अशुभ कार्य हो। हमारे आगे का मार्ग अध्यात्म का मार्ग अवरुद्ध न हो, इसका संकल्प होना चाहिए। इसमें हिंसा, का त्यागकर त्याग और परोपकार की भावना की वृद्धि हो।

3- **सम्यक् वाक्** – हमारा संकल्प हमारी वाणी से अभिव्यक्त होता है। वाणी का संयम आवश्यक है। झूठ न बोलना, चुगली न करना, कठोर शब्द न कहना, व्यर्थ की बातें न करना इति का त्याग हो तथा सत्य और प्रिय वचनों का उपयोग आवश्यक है।

4- **सम्यक् संकल्प** – सम्यक् संकल्प का अर्थ है अशुभ कार्यों को न करना। तीन कर्म हैं जिनको न करने के लिए कहा गया है हिंसा, चोरी तथा इन्द्रिय भोग। सम्यक् कर्मात् इन तीनों कर्मों का भावात्मक रूप होगा अर्थात् हिंसा, अस्तेय, इन्द्रिय संयम करना ही सम्यक् कर्म है। इसमें ऐसे दो कर्म हैं जैसे झूठ न बोलना और मदिरा-पान न करना, इनसे बचने के लिए

कहा गया है। इन उपर्युक्त पांच कर्मों की विरति को पंचशील कहा गया है। इनको निषेधात्मक तथा भावात्मक रूपों में न करने तथा करने के लिए कहा गया है।

5- सम्यक् आजीविका – सम्यक् आजीविका का अर्थ उचित साधनों से आजीविका का अर्जन करना। जिस मार्ग का निषेध किया गया है उससे आजीविका का अर्जन नहीं करना चाहिए। बिना किसी को कष्ट दिए, हिंसा किए जीविका का उपार्जन करना ही उचित आजीविका है। जैसे शस्त्र का व्यापार, प्राणी का व्यापार, मांस का व्यापार, मद्य का व्यापार, विष का व्यापार निषिद्ध है वर्जित है। इन चीजों से दूर रहना चाहिए।

6- सम्यक् व्यायाम – सम्यक् व्यायाम का अर्थ ऐसे प्रयत्न या उपाय से है जिससे शुभ विचारों को ग्रहण किया जा सके और अशुभ तथा बुरे विचारों का आना रूक जाय। इसके अंतर्गत चार प्रकार के प्रयत्न आते हैं जैसे पहले से वर्तमान अशुभ विचारों को पूर्णतया त्याग करना, नए अशुभ विचारों को मन में न आने देना, मन को सदैव अच्छे विचारों से भरना और इन शुभ विचारों का बने रहने के लिए लगातार प्रयत्न करने रहना। प्रयत्न से ही बुरे विचारों का त्याग तथा नए शुभ विचारों को ग्रहण किया जा सकता है अशुभ विचार के परित्याग करने के लिए अपवि, विचारों का निर्मूलन करने का प्रयास, बलपूर्वक अशुभ विचारों को रोकना और मन को शुभ विचारों से भरना।

7- सम्यक् स्मृति – सम्यक् स्मृति का अर्थ है आत्म –अनात्म के भेद को, वास्तविक और अवास्तविक के भेद को जानना और उसके स्वरूप के प्रति जागरूक रहना। मनुष्य को अपने शरीर, मन, संवेदना अर्थात् शरीर भावना तथा मन तथा इनसे उत्पन्न विचारों के प्रति इसलिए सतर्क रहना चाहिए कि वे गलत मार्ग पर न जाएं। सम्यक् स्मृति से मन राग और द्वेष से स्वतंत्र हो जाता है तथा ध्यान की उच्च स्थिति पर पहुँचता है। मनुष्य को यह सदैव याद रखना चाहिए कि शरीर क्षणिक और विनाशशील है। धर्म की कामना द्रोह आदि से रहित समझना चाहिए। इस दृष्टि से सत् स्मरण करनी ही सम्यक् स्मृति है।

8- सम्यक् समाधि – सम्यक् स्मृति के अभ्यास के बाद मनुष्य अष्टांगिक मार्ग की अंतिम अवस्था तक पहुँच सकता है। समाधि में निर्वाण चाहने वाला मनुष्य अपनी चित्त-वृत्तियों को पूर्ण निरोध कर लेता है। समाधि में चार अवस्थाएं होती हैं जिसे समाधि के चार प्रकार कहे जाते हैं। सवितर्क समाधि समाधि की पहली अवस्था है इसमें साधक तर्क-वितर्क करते रहता है और मन में संशय रहता है। तर्क-वितर्क आर्य सत्त्यों के मनन के क्रम में ही करता है। दूसरी सानंद समाधि में साधक को शांति एवं आनंद की अनुभूति होने लगती है। तीसरी अवस्था में साधक को उदासीनता का भाव आता है तटस्थ रहता है। अंतिक अवस्था में शारीरिक आराम की चेतना भी समाप्त हो जाती है। इस अवस्था की चित्त-वृत्तियों का पूर्णतया हो समाप्त हो जाती है। इस अवस्था के आने पर साधक 'अर्हत' हो जाता है। इस

प्रकार इस अवस्था में सभी प्रकार के निरोधों के बाद दुःख-सुख से परे की वह अवस्था 'निर्वाण की अवस्था है।

3- कांट के अनुसार 'ज्ञान' को पारिभाषित करें।

काण्ट आधुनिक दर्शन के महानतम दार्शनिकों में एक थे। काण्ट के पहले पाश्चात्य दर्शन जगत में दो प्रकार की विचारधाराएं प्रचलित थी। प्रथम बुद्धिवाद जिसके प्रबल समर्थक डेकार्ट्स, स्पीनुजा एवं लाइबनिट्स थे, दूसरी अनुभववाद की विचारधारा थी जिसके समर्थक लॉक, बर्कले एवं ह्यूम थे। बुद्धिवाद के इस विचार के बावजूद कि मानवीय बुद्धि के भीतर ज्ञान प्राप्ति की अपूर्व क्षमता है, डेकार्ट्स, स्पीनुजा और लाइबनिट्स तत्व के विषय में एक मत न हो सके। इससे काण्ट ने यह निष्कर्ष निकाला कि कोरे बुद्धिवाद से वास्तविक ज्ञान की उपलब्धि नहीं हो सकती। लॉक, बर्कले एवं ह्यूम का अनुभववाद भी ज्ञान की समस्या का समुचित समाधान प्रस्तुत नहीं कर सका। ह्यूम का संदेहवाद लॉक के अनुभववाद का साक्षात् परिणाम था। प्रारंभ में काण्ट, लाइबनिट्स और बुल्फ के बुद्धिवाद से विशेष प्रभावित थे, किंतु ह्यूम के तर्क-प्रहारों ने बुद्धिवाद का महल सदा के लिए ढहा दिया। ह्यूम के संदेहवाद ने काण्ट को इतना प्रभावित किया कि उन्हें कहना पड़ा कि ह्यूम ने मुझे रूढ़िवादी मोहनिद्रा से जगा दिया। उन्होंने ह्यूम के संदेहवाद को काफी गंभीरता से लिया। रूढ़िवादी मोहनिद्रा से उदबुद्ध पर काण्ट ने अनुभव किया कि ह्यूम के संशयवादी निष्कर्ष लॉक के अनुभववाद के साक्षात् परिणाम है। अतः उन्होंने लॉक के प्राक्कल्पनाओं को प्रतिवर्तित करके घोषित किया कि ज्ञान को बाह्य वस्तुओं के अनुरूप न होकर स्वयं बाह्य वस्तुओं को ही ज्ञान के अनुरूप होना चाहिए।

कांट के अनुसार ज्ञान

कांट ने बुद्धिवाद एवं अनुभववाद में निहित असंगतियों के कारण इन्हें अग्राह्य तो प्रमाणित कर दिया पर केवल इतने से ही उनकी समस्या का समाधान नहीं हो जाता। निःसंदेह न तो बुद्धिवाद और न अनुभववाद ज्ञानमीमांसा की दृष्टि से युक्तिसंगत कहा जा सकता है। जहां एक ओर बुद्धिवाद सावैभौमिकता और अनिवार्यता को ही आदर्श ज्ञान का आवश्यक लक्षण मानने के कारण बुद्धि को ज्ञान का साधन मानता है तथा अनुभूतियों की पूर्ण अवहेलना करता है वहां दूसरी ओर अनुभववाद मात्र नवीनता को आदर्श ज्ञान का आवश्यक लक्षण मानने के कारण केवल अनुभूतियों को ज्ञान का साधन मानता है तथा बुद्धि की पूर्ण अवहेलना करता है। परिणाम यह होता है कि दोनों ही एकांगी बन जाते हैं और काण्ट के लिए अग्राह्य हो जाते हैं। अतः कांट के लिए यह समस्या बनी रह जाती है कि ज्ञानोत्पत्ति की अनुचित व्याख्या कैसे की जाए?

कांट के अनुसार बद्धिवाद तथा अनुभववाद दोनों में आंशिक सत्यता निहित है। बुद्धिवादियों की यह मान्यता सही है कि आदर्श ज्ञान वह है जिसमें अनिवार्यता तथा सार्वभौमिकता हो। ठीक इसी प्रकार अनुभववादियों की यह मान्यता भी पूर्णतः उचित है कि जिस ज्ञान में नवीनता नहीं वह आदर्श ज्ञान नहीं कहा जा सकता। अतः कांट इन दोनों सिद्धांतों में निहित इन विशेषताओं को स्वीकार करते हैं और बताते हैं कि यथार्थ ज्ञान वह है जो सदा के लिए तथा सबों के लिए एक समान सत्य हो साथ-ही-साथ व किसी भी विषय-वस्तु के संबंध में कुछ नई जानकारी प्रदान करता हो। इतना निश्चित कर लेने के बाद कांट ने बताया है कि ज्ञान सदा ही निर्णय में अभिव्यक्त होता है अर्थात् निर्णय ही ज्ञान की प्रथम इकाई है। कांट कहते हैं कि मन के विचारों को भाषा के माध्यम से व्यक्त करना ही निर्णय है। चूँकि कांट निर्णय को ज्ञान की प्रथम इकाई मानते हैं और आदर्श ज्ञान के आवश्यक लक्षणों के रूप में सार्वभौमिकता, अनिवार्यता और नवीनता की आवश्यक मानते हैं अतः उनकी अनुसार केवल वैसे निर्णयों को ही आदर्श ज्ञान कहा जाएगा जिनमें ज्ञान के ये लक्षण निहित हों। मन के सारे विचारों को जिन्हें हम भाषा के माध्यम से व्यक्त करते हैं साथ-ही-साथ उसमें अनिवार्यता, सार्वभौमिकता एवं नवीनता भी हो। नवीनता तभी उसमें आएगा जब वह संश्लेषणात्मक निर्णय से प्राप्त होता हो। सार्वभौमिकता एवं अनिवार्यता विश्लेषणात्मक और पूर्वानुभविक निर्णय एवं नवीनता संश्लेषणात्मक निर्णय से प्राप्त ज्ञान हो। इस प्रकार कांट के अनुसार “ज्ञान पूर्वानुभविक संश्लेषणात्मक निर्णयों की समष्टि है।”

अब प्रश्न उठता है कि किस प्रकार पूर्वानुभविक संश्लेषणात्मक निर्णयों की स्थापना की जा सकती है। कांट यह मानते हैं कि निःसंदेह बुद्धिवाद एवं अनुभववाद अपने आप में असंगत हैं पर इसका यह अर्थ नहीं कि उनमें केवल दोष हो दोष हो। इन सिद्धांतों में कुछ विशेषताएं भी निहित हैं और इसलिए ज्ञान की समुचित व्याख्या के लिए यह आवश्यक है कि हमलोग उसमें निहित विशेषताओं को अपना लें तथा असंगतियों को छोड़ दें। यदि हम ऐसा करते हैं तो कांट के अनुसार वड़ी ही सरलता से पूर्वानुभविक संश्लेषणात्मक निर्णयों की स्थापना की जा सकती है। सारांश यह है कि कांट ने इस तथ्य को पहचाना कि इन दोनों ही विचारों में सच्ची है क्योंकि ज्ञानोत्पाति में इन दोनों को योगदान निहित है।

इस प्रकार ज्ञान निर्माण में दो तत्वों को निहित पाते हैं एक ज्ञान का कच्चा माल, दूसरा उस कच्चे माल का एक आकार देना। एक को कच्चा माल या सामग्री कहें तो दूसरे को आकार कहा जा सकता है। ज्ञान की सामग्री संवेदन शक्ति द्वारा बाहर से प्राप्त होती है जिसमें अनुभववाद की भूमिका होती है और उसका आकार बुद्धि या प्रज्ञा द्वारा निर्मित होता है। जब हमारी संवेदन शक्ति बाहर से संवेदन-सामग्रियों को प्राप्त करती है तो वे असंबद्ध और अस्पष्ट होती और उन्हीं असंबद्ध संवेदन सामग्रियों को संबद्ध और व्यवस्थित होकर ज्ञान का आकार प्राप्त करने के लिए बुद्धि की मशीनी ढांचे पर चढ़ाना पड़ता है अतः ज्ञान आवश्यक रूप से अनुभूतियों की उपज है ऐसा नहीं कहा जा सकता। जहां तक ज्ञान की सामग्री का

संबंध है, यह निश्चय ही अनुभूतियों द्वारा ही प्राप्त होता है और इस दृष्टि से अनुभववादियों के इस कथन में सच्चाई है कि बिना संवेदन सामग्रियों के ज्ञान की रचना संभव नहीं। कांट ज्ञान निर्माण में अनुभूतियों के महत्व की उपेक्षा नहीं करते बल्कि वे स्वयं इसके योदान की सराहना करते हैं। उन्होंने स्वयं कहा है कि मेरा एहन यह है कि हम बुद्धि से क्या प्राप्त करने की आशा कर सकते हैं जबकि अनुभव प्राप्त सारी सामग्रियों और सहायता को छीन लिया जाए। पर केवल संवेदन सामग्रियों से ही तो ज्ञान का निर्माण नहीं किया जा सकता। अतः ज्ञानोत्पत्ति में संवेदन शक्ति और बुद्धि दानों का समान महत्व है और इसलिए बिना इसके आपसी सहयोग के ज्ञान की रचना संभव नहीं। अनुभव और बुद्धि दोनों ही अपने आप में पंगु हैं। जिस प्रकार अंधे और लंगड़े की कहानी में दोनों ही अपनी-अपनी रक्षा के लिए एक दूसरे की अपेक्षा होती है। इसलिए कांट ने कहा है कि “प्रत्ययों के बिना संवेदना खोखले हैं और संवेदन प्रत्ययों के बिना अंधे हैं।”

4- समीक्षात्मक चिंतन के अंतर्गत आपातिक एवं तर्कसाम्यमूलक प्रकथनों की व्याख्या करें।

मनुष्य जब किसी वस्तु को देखता है या उसके बारे में सोचता है तो उसे व्यक्त करने के लिए शब्दों या पदों का प्रयोग कर भाषा के माध्यम से वाक्य या ताक्यांशों में व्यक्त करता है तो वाक्य बनते हैं या वकैवाक्य बनते हैं। वाक्य को तर्कवाक्य में बदल सकते हैं। फिर दो या दो से अधिक तर्कवाक्य संयुक्त होकर यौगिक तर्कवाक्य बनते हैं। तर्कवाक्य एवं प्रकथन समानार्थक अर्थ में प्रयुक्त होते हैं। इस तरह आधुनिक तर्कशास्त्र के अनुसार प्रकथनों के दो प्रकार बताए गए हैं – सरल प्रकथन एवं यौगिक प्रकथन। सरल प्रकथन या तर्कवाक्य वह है जिसके निर्मायक अंग के रूप में कोई अन्य प्रकथन नहीं हो। जैसे श्याम गोरा है। कुर्सी सुंदर है। इनमें केवल एक-एक प्रकथन है। यौगिक प्रकथन वह है जिसमें एक से अधिक प्रकथन हों जैसे नंदु आएगा तो रमेश आएगा, राम ईमानदार है या बेइमान। अतः यौगिक प्रकथनों में एक से अधिक प्रकथन होते हैं पर यौगिक प्रकथनों के निर्मायक अंग स्वयं भी यौगिक हो सकते हैं।

यौगिक प्रकथन चार प्रकार के होते हैं – संयोजन, वियोजन, आपादान या आपातिक एवं निषेधक। संयोजन प्रकथन दो या दो से अधिक सरल प्रकथनों के बीच ‘और’ या ‘तथा’ शब्द लगाकर एक यौगिक प्रकथन की रचना की जाती है। जैसे कुर्सी बैठने की वस्तु है और कलम लिखने की वस्तु है। दो या दो से अधिक प्रकथनों को ‘या’ लगाकर वियोजित रूप से संबंधित किया जाता है तो उसे वियोजनमूलक प्रकथन कहते हैं। जैसे— राम मूर्ख है या बदमाश।

आपातिक या आपादान या सोपाधिक प्रकथन – यदि कोई प्रकथन किसी अन्य प्रकथन पर आश्रित बतलाया जाय तो वह एक सोपाधिक प्रकथन कहलाता है। जैसे यदि वह पढ़ेगा तो वह पास करेगा। यह एक यौगिक प्रकथन है और इसमें एक पूर्ववर्ती कथन है और अनुवर्ती प्रकथन है यदि वह पढ़ेगा पूर्ववर्ती प्रकथन है जबकि पास करेगा अनुवर्ती प्रकथन है। अनुवर्ती प्रकथन पूर्ववर्ती प्रकथन पर आश्रित है। पूर्ववर्ती न होने पर अनुवर्ती नहीं होगी। पूर्ववर्ती पर ही अनुवर्ती आश्रित है। पूर्ववर्ती अनुवर्ती के आपादन संबंध पर ही सोपाधिक प्रकथन बनते हैं इस लिए इन्हें आपादान तर्कवाक्य या प्रकथन भी कहा जाता है। इसे प्रतीक से इस तरह से व्यक्त कर सकते हैं। यदि.....तो आपातिक प्रकथन को “ \supset ” हार्सशू के प्रतीक का प्रयोग करते हैं। इसे संक्षेपीकरण कर इस प्रकार से सत्यता मूल्य निकाल सकते हैं—

<u>p</u>	<u>q</u>	<u>$p \supset q$</u>
T	T	T
T	F	F
F	T	T
F	F	T

<u>p</u>	<u>q</u>	<u>$\sim q$</u>	<u>$p \cdot \sim q$</u>	<u>$\sim (p \cdot \sim q)$</u>	<u>$p \supset q$</u>
T	T	F	F	T	T
T	F	T	T	F	F
F	T	F	F	T	T
F	F	T	F	T	T

अंतिम कॉलम एवं अंतिम से पहले के सत्यता मूल्य एक समान है।

तर्कसाम्यमूलक प्रकथन – यदि किन्हीं दो प्रकथनों के सत्यता-मूल्य समान हो अर्थात् या ता दोनों सत्य हों या दोनों असत्य हों तो उनमें वस्तुगत समता या तुल्यता तर्कसाम्यमूलक प्रकथन मानी जाती है। इस संप्रत्यय को तीन शिरो रेखा \equiv के द्वारा व्यक्त किया जात है और इसका सत्यता मूल्य निकाला जा सकता है जैसे –

<u>p</u>	<u>q</u>	<u>$p \equiv q$</u>
T	T	T
T	F	F
F	T	F
F	F	T

$(p \cdot q) \equiv (q \cdot p)$ इन दोनों तार्किक समताह है या नहीं इसे भी सत्यता मूल्य चार्ट से निकाला जा सकता है—

<u>p</u>	<u>q</u>	<u>$p \cdot q$</u>	<u>$q \cdot p$</u>
T	T	T	T
T	F	F	F
F	T	F	F
F	F	F	F

इस प्रकार कॉलम तीन एवं कॉलम चार के सत्यता मूल्य एक समान है इसलिए $(p \cdot q)$ और $(q \cdot p)$ समता है। दो प्रकथनों की तार्किक समता के आधार पर पुनरुक्ति, व्याधातक, आपातिक प्रकथन के प्रकार जाने जाते है।

5- गीता दर्शन के निष्काम कर्म की समीक्षात्मक व्याख्या करे।

धर्म, नीति और दर्शन की दृष्टि से गीता का दर्शन भारत में ही नहीं, सम्पूर्ण विश्व में महत्वपूर्ण है गीता में निहित उपदेशों का सार्वभौमिक महत्व है। इसमें संपूर्ण मानव जाति को प्रभावित किया है इसका प्रमाण यही है कि विश्व के अनेक भाषाओं में इसका अनुवाद किया

गया है। गीता के चिरंतन एवं स्थायी मूल्य का जैसा विशद और स्पष्ट विवेचन मिलता है वैसा विवेचन कभी नहीं किया गया। गीता का स्थायी मूल्य केवल भारत के लिए नहीं वरन् मनुष्य मात्र के लिए है। गीता की लोकप्रियता के कई कारण हैं इसमें मानव जीवन संबंधित जटिल से जटिल समस्याओं का विवेचन और शाश्वत समाधान का प्रस्तुतीकरण है। गीता ने जीवन की एंसी समस्याओं को प्रस्तुत किया है जिनका धर्म, व्यक्ति, जाति या देश काल विशेष से संबंध नहीं है। इस अर्थ में धर्म निरपेक्षता के कारण ही सार्वलौकिक और सार्वभौमिक सिद्ध हुई है।

गीता महाभारत के भीष्म व का एक अंश है जिसमें सात सौ श्लोक हैं तथा अध्यायों में लिखी गई है। इसमें जीवन और आचरण से संबंधित जीवन के मूल्य, आदर्श और परम लक्ष्य प्राप्ति से संबंधित समस्याओं का समाधान बताया गया है। मानव का प्रतिनिधित्व अर्जून कर रहे हैं और गुरु के रूप में भगवान स्वयं उपदेशक हैं। भगवान श्रीकृष्ण अर्जून को उपदेश के रूप में अनेक तर्कों द्वारा उनकी समस्या के निराकरण का निश्चय कराते हैं परंतु गीता की विशेषता तर्कों पर नहीं उपदेश पर आधारित हैं। आधिकारिक रूप में श्रीकृष्ण अर्जून को उपदेश देते हैं। इसलिए गीता को तर्कपरक है उपदेशात्मक भी है एवं यह हृदयग्राही है।

गीता दर्शन में व्यक्तिगत और सामाजिक नैतिकता के मूल सूत्रों तथा दार्शनिक मंतव्यों के विवेचना करती है। मूसे गीता में मोक्ष, आत्मा की अमरता, पुनर्जनम, ईश्वर की सत्ता की स्वीकृति है। जीवन के परम लक्ष्य के रूप में मोक्ष को स्वीकार करते हुए गीता इसके लिए ज्ञान, भक्ति और कर्म तीन मार्गों का निर्देश करती है, परंतु बहुत ही स्पष्ट रूप में ज्ञान और भक्ति को आधार रूप में स्वीकार करते हुए गीता निष्काम कर्म को ही महत्व प्रदान करती है। इस दृष्टि से गीता का दृष्टिकोण समन्वयकारी है। नैतिक दृष्टि से गीता का निष्काम कर्म का सिद्धांत अत्यधिक महत्वपूर्ण है।

गीता दर्शन में निष्काम कर्म

जीवन की चाहे जितनी विषम परिस्थिति हो मनुष्य को उसमें अपने कर्तव्य का पालन करना ही चाहिए। गीता में अर्जून को श्रीकृष्ण ने बार-बार यही समझाया है कि बिना कर्म के परिणाम पर विचार किए अर्थात् परिणाम की आकांक्षा का त्याग करके कर्तव्य-पालन की दृष्टि से सभी कर्म करना चाहिए। गीता इसी सिद्धांत को 'निष्काम-कर्मयोग' की संज्ञा दी गई है। निष्काम के अर्थ को गीता के दूसरे अध्याय में इस श्लोक के माध्यम से समझाया है—

कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचान्।

माकर्मफलहेतुर्भूर्मा ते संगोऽस्त्वकर्मणि ॥ 2.47 ॥

अर्थात् तुम्हारा कर्म करने मात्र में ही अधिकार है, उसके फल में कभी नहीं। अतः तुम कर्मों के फल की वासना वाला भी मत होओ। इतना ही नहीं, तुम्हारी कर्म न करने में भी प्रीति न होवे। सारांश में कर्म तो मनुष्य को किसी भी दशा में करना ही है। बिना कर्म के रह नहीं सकता। ऐसी दशा में कर्म निरासक्त होकर किया जाए। फिर आगे वे पुनः कहते हैं –

योगस्थः कुरु कर्माणि संग त्यक्त्वा धनंजय।

सिद्धयसिद्धयोः समो भूत्वा समत्वं योग उच्यते।।2.48।।

अर्थात् हे धनंजय आसक्ति त्याकर, सफलता-असफलता में समान भाव रखकर कर्म करना चाहिए। गीता के अनुसार किसी भी रूप में मनुष्य को कर्म तो करना ही है, क्योंकि मनुष्य को अपने परम लक्ष्य की प्राप्ति न तो कर्म का आरंभ करने से, न ही कर्म के त्याग से हो सकती है। कर्म न छोड़ सकने का कारण यह है कि वास्तव में कोई एक क्षण भी कर्म किए बिना नहीं रह सकता क्योंकि कोई भी पुरुष किसी काल में क्षण मात्र भी बिना कर्म किए नहीं रहता। निःसंदेह सब प्रकृति से उत्पन्न हुए गुणों द्वारा कर्म करते हैं। इसीलिए मनुष्य को अपने निर्धारित कर्म करना ही चाहिए। कर्म न करने से कर्म करना अधिक अच्छा है। शरीर का व्यापार भी कर्म बिना नहीं चल सकता। सार्थक जीवन के लिए कर्म आवश्यक है और कर्म इसलिए भी आवश्यक है कि यदि कर्म न किया जाए तो लोक संग्रह अर्थात् सामाजिक कल्याण संभव नहीं होगा। राजा जनक ने कर्म से ही परम लक्ष्य को प्राप्त किया था। अतः लोक संग्रह की दृष्टि से भी कर्म करना उचित है। श्रीकृष्ण कहते हैं कि मुझे तीनों लोकों में भी कुछ करने को नहीं है, पाने योग्य कोई वस्तु न पाई हो, ऐसा नहीं है, तो भी मैं कर्म में लगा रहता हूँ अर्थात् सूर्य, चन्द्र, पृथ्वी आदि की अविराम क्रियाएं ईश्वर के कर्म को ही सूचित करती हैं। श्रीकृष्ण और कहते हैं कि मैं अनवरत क्रियाशील हूँ। एक क्षण भी बिना कर्म के नहीं रह सकता। यदि मैं कर्म न करूँ तो ये लोक भ्रष्ट हो जाए, अव्यवस्था और विश्रृंखलता उत्पन्न हो जाए और लोकों का भी नाश हो जाए। अतः लोक को बचाने के लिए ईश्वर को कर्म करना पड़ता है। अतः जब कर्म करन ही है तो जैसे अज्ञानी लोग आसक्त होकर कर्म में निरत रहते हैं वैसे ही ज्ञानी को आसक्ति रहित होकर लोक कल्याण, लोक संग्रह की इच्छा से कर्म करना चाहिए।

निष्काम कर्मयोग की विशेषताएं

1- भारतीय धर्म-साधना में मोक्ष की प्राप्ति के दो मार्गों को निर्धारित किया गया है प्रवृत्ति मार्ग एवं निवृत्ति मार्ग। निवृत्ति मार्ग ही मोक्ष मार्ग है यही निष्काम है यही आशारहित कर्म है, बंधनमुक्त कर्म है, आसक्ति रहित है।

2- निष्काम कर्म मार्ग की यह भी विशेषता है कि इसके द्वारा ज्ञान और भक्ति में समन्वय हो जात है। इस प्रकार गीत में ज्ञान, भक्ति, कर्म का पूर्ण समन्वय किया गया है।

3- निष्काम कर्मी स्थितप्रज्ञ की अवस्था में आ जाता है अर्थात् मन में उठती हुई समस्त कामनाओं का त्याग करता है और आत्म द्वारा ही आत्मा में संतुष्ट रहता है।

4- निष्काम कर्म करने वाले लोक संग्रही एवं लोक कल्याणकारी कर्म करने लगते हैं।

5- निष्काम कर्म मार्ग में कर्त्तापन का अभाव हो जाता है।